साहित्य और सिनेमा के अन्तर्सम्बन्ध

डॉ0 हर गोविन्द पुरी,

एन– 19 ए/6 रेणुसागर– सोनभद्र (उ0प्र0)

साहित्य और सिनेमा का समाज सापेक्ष सत्तामीमांसा (ऑटोलाजी) करना, समाज में घट रहे भाव एवं विचार–विन्यासों की प्रकृति का विश्लेषण करना मनुष्य की सम्पूर्ण सत्ता का मूलाधार है। आत्ममींमांसा के द्वारा समाज की ज्वलंत प्रवृत्तियों को साहित्य और सिनेमा–विमर्श के सह–सम्बन्धों के द्वारा रूपायित करना चुनौती भरा क्षेत्र रहा है। विशेषकर तब, जब हम इस आधुनिकता के गूढ़ मनोभावों की तहकीकात के लिए प्रयासरत हैं। समाज–विज्ञान के बदलते परिदृश्य में किरदारों के दैहिक प्रदर्शन और रूपगत बिगड़ते विन्यासों के तहत पुनः समाज और सिनेमा के सह–सम्बन्धों का परिवीक्षण करना आवश्यक हो जाता है साथ ही कला एवं संस्कृति के उजाड़ हो रहे संस्कारों का अनुशीलनात्मक अध्ययन भी अनिवार्य हो जाता है। इस प्रकार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के आलोक में बिगड़ती परिस्थितियों को परखना होगा। समाज की पकड़ के सापेक्ष साहित्य और सिनेमा में चल रही प्रतिद्वंद्विता का आकलन यह बताता है कि दोनों में समाज के समकक्ष उतार–चढ़ाव लगा रहता है। दोनों तत्त्व समाज को बेहतर बनाने के लिए कृत–संकल्पित हैं। सिनेमा का प्रभाव आमजन पर भले ही अधिक रहा है किन्तु प्रामाणिकता, विश्वसनीयता और वैधानिकता में साहित्य का कोई सानी नहीं हैं।

सांस्कृतिक–राजनीति के बेलगाम होते अंकुरण को सही मार्ग निर्देशन करना तथा उसके पल्लवन के प्रति हमदर्दी–पूर्ण रवैया अपनाना साहित्य और सिनेमा का ज्वलंत मुद्दा है। समाज–सुधार और समन्वय की विराट चेष्टा का सम्पूरित आगाज सिनेमा के माध्यम से अत्यधिक प्रभावी रहा है। बौद्धिक विग्रहों और टूटते भावात्मक चेष्टाओं में मानव यान्त्रिक होता जा रहा है। मानव–अभियंत्रण की यह बैसाखी आगत पीढ़ियों के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकती है। बौद्धिकता और भावात्मकता के विविध रूपों का अनुसंधान करने वाले साहित्य और सिनेमा ने समाज के सभी वर्गों में आपसी भाईचारा की भावना का अभिवृद्धि किया है। दार्शनिक रुझानों, समाज–सापेक्ष परिवर्तनों, अवमानना के नित नये आयामों को आकार देता सिनेमा जगत, वैश्विक धरातल के विविध स्वरूपों को सहजता से परोसने में अग्रसर रहा है। जरूरत है– साहित्यिक सिनेमा और सिनेमिक–साहित्य के अन्तर्सम्बंधों को सहगामी रूप देकर अनुसंधान करने की। यह अनुसंधान 'समाजपरक मूवमेंट, आर्ट–कल्चर एवं मॉरेलिटी' के लिए आदर्श सिद्ध होगा। सांस्कृतिक दीवारों के विभाजकता में छेद करके पार जाने की मुहिम के रूप में साहित्यिक–सिनेमा उपयोगी सिद्ध हो रहा है।

भाषा, भाव और संस्कृति के उपक्षेत्रीय उपक्रमों के सम्बर्द्धन हेतु साहित्यिक–सिनेमिक प्रतिबद्धता के जुड़ाव को मूल्यवर्धित किया जा सकता है। सिनेमा के बदलते चेहरे और साहित्य के नेतृत्वहीन फैलाव को सही दिशा, दशा, दृष्टि और दर्शन देने की जरूरत है। पूँजी संचयन की गिद्ध–लोलुप दृष्टि ने समाज–विज्ञान के स्तर को क्षोभित कर रखा है। उच्च भावपरक, संवेदनशील सिनेमा एवं साहित्य का नवनिर्माण वर्तमान समय के लिए आवश्यक है। पूँजीगत–उद्योग की बढ़ती प्रवृत्ति ने एक स्वस्थ सिने–साहित्य की बढ़ती

माँग को भी अनदेखी किया है। सिनेमा और साहित्य का नैतिक, कल्याणपरक, सुखद एवं वातावरणीय शुद्धता ही मानव को जागरूक बनाकर सही दिशा निर्देशन दे सकता है यह महत्त्वपूर्ण संयोजन गति सिने–साहित्य के कन्धों पर है। सिनेमा और साहित्य को किसी खास देशकाल और परिस्थितियों में बाँधकर नहीं देखा जा सकता है। सभी देशों की कला, संस्कृति एवं साहित्य एक–दूसरे देशों के आम नागरिकों तक पहुँच चुका है। साहित्य और सिनेमा को दिये जाने वाले विश्वस्तरीय पुरस्कार इसके प्रमाण हैं।

'सहितस्य भावः साहित्यम्' सहित का भाव ही साहित्य है। यहाँ पर 'गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च' से 'ष्यञ्' प्रत्यय होकर साहित्य शब्द बना है। 'साहित्यस्य कर्म साहित्यम्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार 'कवि कर्म रूप साहित्य' के अन्दर सम्पूर्ण वाड्.मय का अन्तर्भाव हो जाता है। 'हितेन सह सहितं भावः साहित्यम्' के अनुसार ही काव्य का सृजन किया गया होगा। शब्दकल्पद्रुम में श्लोकमय ग्रन्थ को साहित्य कहा गया है– 'मनुष्यकृतः श्लोकमयः ग्रन्थविशेषः साहित्यम्'। राजशेखर के अनुसार– 'शब्दार्थयोर्यथावत्सह–भावेन विद्या साहित्य विद्या' अर्थात् सहृदयों को आह्लादित करने वाले शब्द और अर्थ के यथायोग्य सहयोग वाली विद्या साहित्य विद्या कहलाती है। काव्य की शोभाशीलता के प्रति शब्द अर्थ की न्यूनता और आधिक्य से रहित अनिर्वचनीय लोकोत्तर मनोहारिणी स्थिति ही साहित्य है। सामान्यतः साहचर्य, भाईचारा, मेलमिलाप से रहने की स्थिति ही साहित्य है।[1] वह बन्ध अथवा वाक्य जिनके द्वारा समूह का हित अथवा कल्याण हो, जो पाठक, दर्शक अथवा श्रवणकर्ता सामाजिक के हृदय को आनन्दित करता है, साहित्य कहा जाता है। आचार्य भामह ने काव्य और साहित्य को एक मानकर कहा है –'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्।'

हिन्दी के आधुनिक विचारकों ने भी साहित्य पर अपना विचार व्यक्त किया है– डॉ0 गुलाबराय के अनुसार– 'साहित्य संसार के प्रति हमारी मानसिक प्रतिक्रिया अर्थात् विचारों, भावों, और संकल्पों की शाब्दिक अभिव्यक्ति है और वह हमारे किसी न किसी प्रकार के हित का साधन करने के कारण संरक्षणीय हो जाती है।' डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है कि– 'मैं साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हूँ। जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोद्दीप्त न कर सके, जो उसके हृदय को पर दुःखकातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने में मुझे संकोच होता है।' डॉ0 राम विलास शर्मा का विचार है कि– 'साहित्य के मूल्य स्थायी हैं। निरपेक्ष रूप से नहीं, सापेक्ष रूप से। देशकाल से परे नहीं, देशकाल की सीमाओं में निरन्तर विकास करती हुई मानव–जाति की संचित सांस्कृतिक निधि के रूप में।' डॉ0 देवीशरण रस्तोगी भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्यशास्त्र को मिलाकर साहित्य के कुल चार तत्त्व स्वीकार किये हैं– बुद्धि तत्त्व, कल्पना तत्त्व, भावतत्त्व और रागतत्त्व।

साहित्य के व्यापक अर्थ में दुनिया के सम्पूर्ण ग्रन्थों में व्यक्त किया गया विचार अथवा भाव साहित्य के अन्तर्गत आता है। इन ग्रन्थों में ललित कलाएँ, संगीत, विज्ञान, दर्शन, इतिहास, आदि सभी साहित्य के अन्तर्गत समाहित की जाती हैं। साहित्य समाज सापेक्ष होता है अतः समाज में घट रही समस्त घटनाओं का यथातथ्य निरूपण करना ही साहित्य का लक्ष्य है। साहित्य और समाज एक दूसरे को हद तक प्रभावित करते हैं। साहित्य समाज के भावों, विचारों, आशा–आकांक्षाओं, क्रिया–कलापों, उसके इतिहास, संस्कृति, परम्परा, एवं जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति करता है इसी प्रकार समाज के उतार–चढ़ावों का पूरा प्रभाव साहित्य के ऊपर पड़ता है। साहित्य के माध्यम से नये संस्कारों का

पालन करके, मानव जीवन में परिवर्तन आ सकता है क्योंकि वैयक्तिक परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन की नींव है।

साहित्य का प्रारम्भ तब से माना जा सकता है जब से मानव ने बोलना सीखा होगा। बोले गये संकेतों, ध्वनियों, शब्दों के लिपिबद्ध करने से साहित्य का जन्म हुआ होगा। प्रारम्भ में भावों को दूसरे तक पहुँचाने के लिए भाषा एवं लिपि का जन्म हुआ होगा। साहित्य मानवीय आवश्यकताओं की उपज है। विश्व की प्राचीन सभ्यताओं के खण्डहरों के उत्खनन से यह पता चलता है कि प्राचीन काल में लिपियों का लेखन प्रयोग मृद्भाण्डों, दीवारों, शिला–चित्रों, वृक्षों आदि पर किया जाता था। इसके लिए जादू–टोने की लकीरें, धार्मिक प्रतीक के चिह्न, और सुन्दरता के लिए बनाये गये चित्र प्राप्त हुए हैं जो लिपि की मूल सामग्री है। इससे सिद्ध होता है कि मानव प्राचीन काल में विचारों के सम्प्रेषण के लिए संकेतों का प्रयोग करता था। कालान्तर में लिपि का विकास होता गया। आज भी कई प्राचीन लिपियाँ अपठनीय हैं। भारत में ज्ञात सबसे प्रचीन लिपि ब्राह्मी है। विद्वानों के अनुसार चार हजार ईसा पूर्व तक लेखन पद्धति का विकास नहीं हुआ था। आज विश्व में प्रमुखतः छः लिपियाँ पाई जाती हैं– प्रतीक लिपि, चित्र लिपि, सूत्र लिपि, भावमूलक लिपि, विचार लिपि और ध्वनि लिपि। प्राचीन भारत में ब्राह्मी, खरोष्ठी और सिन्धु लिपि के अस्तित्व का परिचय मिलता है। भारत में सर्वप्रथम अशोककालीन अभिलेख तीन रूपों में प्राप्त होते हैं– शिलालेख, स्तम्भलेख और गुफा अभिलेख।

विश्व का उपलब्ध सबसे प्राचीन साहित्य ऋग्वेद का समय लोकमान्य तिलक के अनुसार 4000 ईसा पूर्व से 2500 ईसा पूर्व तक था। प्रत्येक दृष्टि से ऋग्वेद एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। इसकी भाषा–शैली–लिपि की उत्कृष्टता से पता चलता है कि ऋग्वेद के पूर्व लिपि और भाषा के सर्वोच्च विकास में हजारों वर्ष का समय लगा होगा तभी इतने उत्कृष्ट ग्रन्थ की प्राप्ति हुई होगी। साहित्य ने हमेशा से मानव को उसके विकास में सहायता की है। समाज–विज्ञान की उन्नति एवं प्रगति में साहित्य का पूरा योगदान रहा है। प्राचीन काल में साहित्य के मुख्यतः तीन स्वरूप थे– दृश्य काव्य, श्रव्य काव्य और चम्पू काव्य। कालांतर में गद्य विधा का जन्म हुआ। गद्य विधा के विकास नें अभिव्यक्ति एवं संचार के क्षेत्र में क्रान्ति ला दी। प्राचीन गद्य विधाओं के अतिरिक्त आधुनिक प्रकीर्ण गद्य विधायें भी साहित्य के क्षेत्र में नित नये आयाम प्रस्तुत कर रही हैं जिनसे अभिव्यक्ति एवं प्रदर्शन की स्वतंत्रता को बल मिला है।

सिनेमा का आविष्कार उन्नीसवीं सदी के अन्तिम वर्षों की सबसे बड़ी देन है। विज्ञान के विकास से सिनेमा जगत में नये–नये अनुसंधान हो रहे हैं। संचार माध्यमों के आविष्कार सें सिनेमा की महत्त्वपूर्ण भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता है। सिनेमा के कार्यक्षेत्र में टेलीविजन, मोबाइल, कम्प्यूटर, वीडियोग्राफी आदि के प्रयोग ने काफी सुगमता ला दी है। अतः सिनेमा से तात्पर्य उन सभी आविष्कारों से है जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सिनेमा के कार्यक्षेत्र में सहयोग करते हैं। Cinema शब्द का अर्थ है– एक थियेटर जहाँ फिल्में दिखाई जाती हैं अथवा फिल्मों का प्रोडक्शन करने वाली इंडस्ट्री। फिल्म शब्द का भाव है –A thin flexible strip of lite sensitive material for photos or motion pictures.[2] इसी प्रकार Movie, a cinema film अथवा Motion picture के लिए प्रयोग किया जाता है।[3] समग्रतः सिनेमा अथवा चलचित्र एक ऐसा वैज्ञानिक आविष्कार है जो जनता को पर्दे के माध्यम से शिक्षा, संस्कार, मनोरंजन आदि देने का प्रयास करता है सिनेमा के द्वारा शिक्षित–अशिक्षित, सभ्य–असभ्य सभी प्रकार के लोग लाभ उठाते हैं किसी भी गूढ़ विषय को सिनेमा सहजता के साथ लोगों के सामने प्रस्तुत

करता है। दृश्य एवं श्रव्य शिक्षण विधि होने के कारण, मानवीय संवेदनाओं के सूक्ष्म व्यापार एवं रेखांकन को भी आम जनता सरलता से समझ लेती है सिनेमा की लोकप्रियता का सबसे बड़ा पहलू यह है कि आम व्यक्ति से जुड़े होने के कारण यह सबको शान्ति, प्रेम, भाईचारा, मनोरंजन, शिक्षा आदि का संदेश देता है सिनेमा और टेलीविजन के बिना वर्तमान मानव का जीवन असन्तोषपूर्ण हो सकता है। रंगमंच पर दिखाये जाने वाले नाटकों के विकास तथा वैज्ञानिक आविष्कारों के संयोग से सिनेमा का जन्म हुआ है। अतः सिनेमा वर्तमान समय की आवश्यकता एवं माँग है। विश्व में सबसे अधिक फिल्में भारत में बनाई जा रही हैं भारतीय सिनेमा जगत वॉलीबुड के नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रकार कुछ खास विशेषताओं के कारण दुनिया के कुछ देशों का सिनेमा हॉलीवुड, टॉलीवुड... आदि के नाम से विख्यात है। सिनेमा लोगों में जागरूकता पैदा करता है। सिनेमा के सन्दर्भ में अभिनेता और फ़िल्म निर्माता पंकज कपूर का विचार है कि– 'मंच की तुलना में टी. वी. और फिल्मों का क्षेत्र व्यापक है।'[4]

हिन्दी सिनेमा का आदिकाल (सन् 1896–1940तक)

भारत में सिनेमा का प्रदर्शन करने की शुरूआत करने का श्रेय 'लुमीयर ब्रदर्स' नामक दो फ्रांसीसी बन्धुओं को जाता है। 7 जुलाई 1896 ई. में बम्बई का 'वाटसन थिएटर' इस सर्वप्रथम प्रीमियर का गवाह बना। उस समय इस थिएटर के टिकट का मूल्य चार आने से लेकर अधिकतम दो रुपये तक था जो तत्कालीन समय का बहुत मँहगा टिकट था। बाद में ये फिल्में 'नावेल्टी थिएटर' में प्रदर्शित हुईं। बम्बई में प्रदर्शित होने वाली फिल्मों में– अराइवल आफ ए ट्रेन, ए.सी बाथ, लेडीज एण्ड सोल्जर्स आन ह्वील्स आदि प्रमुख थीं। लुमीयर बन्धुओं ने जब भारतीयों को फिल्म दिखाया तो लोग बेजान तस्वीरों को चलते–फिरते देखकर दंग रह गये। तत्कालीन समय के संचार के जितने माध्यम थे सबने इन फिल्मों को आश्चर्यजनक, चमत्कारपूर्ण और अलौकिक बताया।

सन् 1904 ई. में मणि सेठना ने भारत का पहला 'सिनेमाघर' बनाया। सर्वप्रथम 'द लाइफ आफ क्राइस्ट' सिनेमाघर में प्रदर्शित की गयी। यही वह फिल्म थी जिसने भारतीय सिनेमा के पितामह दादा साहेब फाल्के को भारत में सिनेमा की नींव रखने को प्रेरित किया। दादा साहेब से पहले सखाराम भाटवाडेकर उर्फ 'सवे दादा' ने फिल्म बनाने की कोशिश की थी। उन्होंने पुंडलीक और कृष्ण नाहवी के बीच कुश्ती फिल्मायी थी। शूटिंग के बाद फिल्म को प्रोसेसिंग के लिए इंग्लैण्ड भेजा गया। वहाँ से आने पर इसे 'पेरी थिएटर' में प्रदर्शित किया गया। बाद में उनके भाई की मौत ने उन्हें तोड़ दिया और उन्होंने कैमरा बेचकर फिल्मों से नाता तोड़ लिया। सन् 1911 ई. में अनंतराम, परशुराम कशंडीकर, एस. एन. पाटकर तथा वी. पी. दिवाकर ने मिलकर सिनेमा बनाने का प्रयास किया। बाद में उन लोगों ने मिलकर सन् 1920 ई. में 'बाल गंगाधर के अंत्येष्टि' पर एक फिल्म बनाई। इसी बीच 1912 ई. में 'सावित्री' नामक एक फिल्म बनायी गयी। 1909 ई. में 'कोरोनेशन थिएटर' नें 'पुण्डलीक' फिल्म बनाई जिसका निर्देशन 'दादा साहेब तोर्ने' ने किया था।[5]

'राजा हरिश्चन्द्र' दादा साहेब फाल्के द्वारा सन् 1913 में बनाई गयी पहली भारतीय अवाक फीचर फिल्म थी, इसकी कुल लम्बाई 'चार रीलों' की थी। इसके अलावा भस्मासुर मोहिनी, सत्यवान–सावित्री, लंकादहन आदि फिल्में बनाई गयीं। हिन्दुस्तान फिल्म कंपनी ने कृष्ण जन्म, कालिया मर्दन, बालि–सुग्रीव, नल–दमयन्ती, परशुराम आदि फिल्में बनाईं।

सन् 1932 ई. में दादासाहब ने एक और अवाक फिल्म बनाई जिसका नाम– 'श्यामसुन्दर' था। अर्देशिर ईरानी द्वारा निर्मित 'आलम आरा' (1931) पहली 'ध्वनि फिल्म' के नाम से मशहूर है इस श्वेत–श्याम फिल्म ने व्यावसायिक सफलता की ऊँचाई प्राप्त की और तब तक की सबसे अधिक कमाई वाली फिल्म बन गयी। 'आलम आरा' के बाद तो जैसे सिनेमाघरों की बाढ़ आ गयी। नये–नये सिनेमाघर हर शहरों में खुलने शुरू हो गये, सिनेमाघरों के साथ ही संगीत की दुनिया में भी बहार आनी शुरू हो गयी। सभी राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय फिल्म इंडस्ट्री तेजी से 'ध्वनि फिल्मों' की ओर मुड़ गयीं और हिन्दी सिनेमा के युग में एक नये युग का सूत्रपात हो गया। सन्– 1930 से सन् 1940 तक का समय हिन्दी सिनेमा का शोरगुल से भरा समय था। भारतीय सिनेमा एक संक्रामक दौर से गुजर रहा था। अंग्रेजों का उत्पीड़न, भय तथा अत्याचार आम जनता में व्यापक रूप से फैला हुआ था। द्वितीय विश्वयुद्ध, भारत का स्वतंत्रता के लिए संघर्ष और साम्प्रदायिकता की आग ने फिल्म इंडस्ट्री को प्रभावित करने में कोई कसर नहीं छोड़ा था। इन विपरीत परिस्थितियों में भी एक ऐसा वर्ग था जो फिल्म निर्माण–कार्य में लगा हुआ था। सन् 1937 ई. में 'अर्देशिर ईरानी' ने 'आलम आरा' की प्रसिद्धि के बाद पहली हिन्दी रंगीन फिल्म– 'किसान कन्या' बनाई। अगले वर्ष 1938 में उन्होंने एक और रंगीन फिल्म बनाई– 'मदर इंडिया।' भले ही रंगीन फिल्मों नें अपने 'कलर' को लेकर सन् 1950 तक कोई खास उपलब्धि हासिल न की हो किन्तु 'प्रणय सम्बन्धी' संगीत और वीरतापूर्ण उत्तेजक फिल्मों ने ग्राहकों की संख्या में काफी बढ़ोत्तरी की।

हिन्दी सिनेमा का स्वर्ण युग (1940–1960 तक)

भारतीय सिनेमा में सन् 1940 से 1960 ई. तक का समय स्वर्णकाल का युग माना जाता है। इस समय संघर्षशील हिन्दी सिनेमा का जनता ने हर्षयुक्त स्वागत किया। इन प्रशंसीय फिल्मों में 'गुरुदत्त' की फिल्म– प्यासा (1957), कागज के फूल (1959), राजकपूर की फिल्म– आवारा (1951), श्री 420 (1955) प्रमुख हैं। इन फिल्मों की सामाजिक कहानी सर्वहारा वर्ग और मूलतः नगर से सम्बन्धित था। उदाहरणस्वरूप फिल्म आवारा की कहानी शहर और भयानक स्वप्निल दुनिया से सम्बन्धित था और 'प्यासा' शहर की अस्वाभाविकता पर केन्द्रित फिल्म थी।[6] इस समय कुछ प्रसिद्ध वीरतापूर्ण फिल्में भी बनाई गयीं जैसे– महबूब खान की मदर इंडिया (1957), जिसने अपना नाम– 'अकेडमी अवार्ड फार बेस्ट फारेन लैंग्वेज' के लिए नामांकित कराया। के. आसिफ का 'मुगल–ए–आजम (1960), विमल राय का मधुमती (1958) जिसकी पटकथा 'रित्वीक घातक' ने लिखा था, पुर्नजन्म पर आधारित फिल्म थी। कमल अमरोही और विजय भट्ट भी तत्कालीन समय के प्रसिद्ध ऐसे फिल्म निर्माता थे जिनके फिल्मों की काफी सराहना की गयी। स्वर्णकाल के प्रसिद्ध अभिनेताओं में धर्मदेव आनन्द (देवानन्द), दिलीप कुमार, राज कपूर और गुरुदत्त तथा अभिनेत्रियों में नरगिस, बैजन्ती माला, मीना कुमारी, मधुबाला, वहीदा रहमान और माला सिन्हा आदि प्रमुख हैं।

जब व्यावसायिक हिन्दी सिनेमा अपने ऊफान पर था उस समय 1950 ई. के आसपास एक नये क्षेत्र पर आधारित सिनेमा का आन्दोलन भी चल रहा था, यह था बंगाली सिनेमा का आन्दोलन। बंगाली सिनेमा भी हिन्दी सिनेमा के समान प्रसिद्धि की ओर अग्रसर था। हिन्दी सिनेमा में चेतन आनन्द का नीचा नगर (1946), विमल राय का दो एकड़ जमीन (1953) सराहनीय फिल्में थीं। कुछ अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि के हिन्दी फिल्म निर्माताओं ने हिन्दी सिनेमा के आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिनमें मनी कौल, कुमार साहनी, केतन मेंहता, गोविन्द निहलानी,

श्याम बेनेगल, और विजय मेहता प्रमुख हैं। सामाजिक यथार्थ को आधार बनाकर बनाई गयी फिल्म 'नीचा नगर' ने पहली कॉन फिल्म महोत्सव में शानदार पुरस्कार प्राप्त किया। 1950–60 के दशक में हिन्दी फिल्में अक्सर प्रतियोगिता में नामित होती थीं उनमें से कुछ ने 'कॉन फिल्म महोत्सव' में पुरस्कार अर्जित किए। गुरुदत्त को जब वे फिल्मों में अच्छा काम कर रहे थे उनके कार्यों को अनदेखा किया गया किन्तु बाद में उनके किये गये योगदान के लिए 1980 के दशक में, मान्यता दी गयी। वर्तमान समय में उसी प्रकार गुरुदत्त को महान 'एशियाई फिल्म निर्माता' के रूप में याद किया जाता है जिस प्रकार बंगाली फिल्म निर्माता 'सत्यजीत रे' को याद किया जाता है। सन् 2002 ई. में 'वाईट और साउण्ड' के द्वारा निर्माता और निर्देशकों पर किये गये सर्वेक्षण में उन्हें 73वाँ स्थान मिला। गुरुदत्त के कुछ फिल्मों को सर्वकालिक महान योगदान के लिए 'टाइम–पत्रिका' नें '100 बेस्ट फिल्मों' की लिस्ट में शामिल किया है जिसमें प्यासा (1957) भी शामिल है इस युग की अन्य कई फिल्में भी 'साईट एण्ड साउण्ड पोल' में ऊँचे रैंक पर थी जैसे– राजकपूर का 'आवारा (1951), विजय भट्ट का 'बैजू बावरा' (1952), महबूब खान का 'मदर इण्डिया (1956) और के.आसिफ का 'मुगल–ए–आजम (1960)'।

आधुनिक सिनेमा

सन् 1960 से 1970 के दशक की फिल्में, रोमांस एवं एक्शन पर आधारित थीं। इस समय के स्टार अभिनेताओं में राजेश खन्ना, धर्मेन्द्र, संजीव कुमार और शशि कपूर तथा अभिनेत्रियों में शर्मीला टैगोर, मुमताज और आशा पारिख प्रमुख थीं। तत्कालीन समय में रोमांटिक फिल्मों के अतिरिक्त रोमांच, खुरदुरापन, गैंगस्टर, डकैती से भरी फिल्में भी बनाई गयीं। सुपरस्टार– अमिताभ बच्चन को 'एंग्री यंग मैन' के रोल में काफी सराहना मिली। रोल, रोड, द क्रेस्ट के इस ट्रेड में मिथुन चक्रवर्ती और अनिल कपूर भी थे जो सन् 1990 ई. तक इस 'क्रेज' पर डटे रहे। इस युग की अभिनेत्रियों में हेमा मालिनी, जया बच्चन और रेखा को उनके किरदार के लिए याद किया जाता रहा है। कुछ हिन्दी फिल्म निर्माता 1970 के दशक में यथार्थ जीवन पर भी फिल्म बनाते रहे जैसे– श्याम बेनेगल। इस समय के फिल्म निर्माताओं में मनी कौल, कुमार साहनी, केतन मेहता, गोविन्द निहलानी और विनय मेहता प्रमुख थे।

1970 के दशक में व्यावसायिक फिल्मों की उन्नति होनी शुरू हुई जैसे कि 1975 में 'शोले'। जिसमें कि अमिताभ बच्चन की स्थिति एक अगुआ अभिनेता की थी। भक्ति फिल्मों में 'जय सन्तोषी माँ' फिल्म बनी तथा यश चोपड़ा द्वारा निर्देशित फिल्म– 'दीवार' सन् 1975 में रिलीज हुई जिसके लेखक सलीम जावेद थे। इस फिल्म में 'हाजिम मस्तान' नामक स्मगलर के वास्तविक जीवन का किरदार निभाया अमिताभ बच्चन नें। जिसमें एक पुलिसमैन ने अपने भाई (जो एक गैंग लीडर था) के विरूद्ध भूमिका निभाई थी।

1980 में मीरा नायर की फिल्म 'सलाम बाम्बे' ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त की जो 1988 में 'कॉन फिल्म महोत्सव' में 'अकादमी अवार्ड फार बेस्ट फारेन लैंग्वेज फिल्म' के लिए नामित की गयी। सन्– 1990 की शुरुआत में फिल्म निर्माताओं का झुकाव परिवार केन्द्रित रोमांस और संगीत की तरफ हुआ। इस प्रकार की कुछ सफल फिल्मों में 'कयामत से कयामत तक (1988), 'मैने प्यार किया (1989), हम आपके हैं कौन (1994)' और 'दिलवाले दुल्हनिया ले जायेगें (1995)' आदि हैं, जिसने अपनी फिल्मों में नये चेहरों को नयी पीढ़ी का 'रोल माडल' बनाकर प्रस्तुत किया, जैसे कि– आमिर खान, सलमान खान और शाहरूख खान। इस काल की अभिनेत्रियों में श्रीदेवी, माधुरी दीक्षित, जुही चावला

और काजोल अधिक प्रसिद्ध हैं। इस दौर में मार–धाड़ और हास्य फिल्में भी सफल हुईं जिनके अभिनेताओं में गोविन्दा तथा अभिनेत्रियों में रविना टंडन, करिश्मा कपूर अधिक लोकप्रिय बन गयीं। 'स्टंट अभिनेता' के रूप में अक्षय कुमार ने खतरनाक 'स्टंट' से एक्शन फिल्मों में जान फूँक दी। इसी दौर में लीक से हटकर, एकदम ज्वलंत मुद्दे को लेकर उभरी फिल्म 'सत्या (1998)' थी जिसके निर्देशक– रामगोपाल वर्मा और पटकथा लेखक थे– अनुराग कश्यप। इस फिल्म में मुम्बई शहर की सामाजिक समस्याओं और भागदौड़ पर प्रकाश डाला गया है। इस काल के कुछ प्रमुख अभिनेता–अभिनेत्री थे– नाना पाटेकर, मनोज वाजपेयी, मनीषा कोईराला, तब्बू और उर्मिला मांतोण्डकर।

सन् 2000 में 'वॉलीवुड' ने विश्व स्तर पर प्रसिद्धि प्राप्त की तथा भारतीय फिल्म–जगत को गुणवत्ता और नयी विचारों वाली कहानियों के रूप में पहचान दिलाई। कुछ बड़े फिल्म निर्माताओं के बैनर तले (जैसे– यशराज फिल्म और धर्म प्रोडक्शन) लीक से हटकर फिल्में बनाई गयीं। भारतीय फिल्में केवल भारत में ही नहीं बल्कि भारत के बाहर भी प्रदर्शित हुईं और उन्हें बाहर भी सराहा गया जैसे–'लगान (2001), देवदास (2002), कोई मिल गया (2003), कल हो ना हो (2003), वीरजारा (2004), रंग दे बसन्ती (2006), लगे रहो मुन्नाभाई (2006), कृश्श (2006), धूम–2 (2006), ओम शान्ति ओम (2007), चक दे इण्डिया (2007), रब ने बना दी जोड़ी (2008), गजनी (2008), 3 इडियट्स (2009), माई नेम इज खान (2010) और दबंग (2010) रा0वन (2011), बॉडीगार्ड (2011), सिंघम (2011)। इस अत्याधुनिक युग के प्रसिद्ध अभिनेताओं में– ह्रतिक रोशन, अभिषेक बच्चन तथा अभिनेत्रियों में– ऐश्वर्या राय, प्रीति जिन्टा, रानी मुखर्जी, करीना कपूर और प्रियंका चोपड़ा प्रमुख हैं। इस दौर में भारत के स्वाभिमान, संघर्ष और स्वतंत्रता से भरी फिल्म 'लगान' ने 'लोकार्नो इण्टरनेशनल फिल्म फेस्टिवल' में 'आडियन्स एवार्ड' जीता और 'बेस्ट फॉरेन लैंग्वेज फिल्म' हेतु– '74वें अकादमी अवार्ड' में शामिल की गयी जबकि 'देवदास' और 'रंग दे बसन्ती' दोनों 'बाफ्टा अवार्ड फार बेस्ट फॉरेन लैग्वेज फिल्म' के लिए नामित की गयीं।

हिन्दी सिनेमा के इतिहास में सन् 2010 के बाद का समय– हिन्दी फिल्म इंडस्ट्री के लिए अधिक संवेदनशील है, इस युग में दर्शकों को ध्यान में रखकर उनकी इच्छा और माँग के अनुरूप फिल्में बनाये जाने की एक प्रतिद्वंद्विता सी चल रही है जिसमें वर्तमान जीवन के समस्त कोणों तथा अछूते प्रसंगों को, हाशिए के बाहर के व्यक्ति को ध्यान में रखकर, फिल्म निर्माण करने का प्रयास चल रहा है। जिसमें बाक्स ऑफिस पर जोरदार दस्तक देने और पूँजीगत लाभ कमाने का प्रयास भी सम्मिलित है। सन् 2012 में आने वाली फिल्मों में 'पप्पू कान्ट डान्स साला', द डर्टी, रॉकस्टार, डान–2, अग्निपथ (नया), लंका, तू हम चलें, लेडिज वर्सेज रिकी बहल, खिलाड़ी 786, राउडी राठौर, वन अपान ए टाइम इन मुंबई–II आदि हैं।[7] अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार पाने को ध्यान में रखकर आगे आने वाले फिल्मों को बनाया रहा है। ग्रामीण दर्शकों की रूचि एवं भावना, विदेशों में भी लोकप्रिय होने का प्रयास चल रहा है। देखना यह है कि ये फिल्में आगे आने वाले समय में किस हद तक सफल होती हैं।

सिनेमा के आविष्कार के बाद जैसे–जैसे इसके क्षेत्र का विस्तार होता गया, वैसे–वैसे साहित्य में भी नये–नये प्रयोग होने लगे। सिनेमा के प्रभाव से साहित्य में आदर्शवाद के स्थान पर यथार्थवाद, मार्क्सवाद, जनवाद, रंगभेद, नस्लभेद, राष्ट्रवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि अनेक वादों और समस्याओं पर लेखन कार्य शुरू हो गया। कम्प्यूटर के विकास ने साहित्य और संचार के क्षेत्र में क्रांति ला दी। नेट, ट्विटर, वेब लिटेरचर आदि इलेक्ट्रॉनिक साहित्य के विकास से जन भावनाओं और विचारों का सम्प्रेषण शीघ्रता से

तथा प्रभावी ढंग से पहुँचने लगा। पश्चिमी साहित्य तथा संस्कृति के अनुकरण से हिन्दी साहित्य में त्रासदी, दुखान्तता, जादूगरी, आश्चर्यजनक–अविश्वनीय घटनाएँ, समुद्री यात्राएँ, अन्तरिक्षी संघर्ष, उपलब्धियाँ तथा परग्रही मानव जैसे विविध विषयों पर शोध एवं लेखन कार्य किया जाने लगा है। अनेक सिनेमिक पत्र–पत्रिकाएँ हिन्दी साहित्य में अपना स्थान बना चुकी हैं। सिनेमिक पुस्तकों तथा पत्र–पत्रिकाओं के अतिरिक्त साहित्यिक समाचार–पत्रों, पत्रिकाओं, शोध–पत्रों और शोध–प्रबन्धों में सिनेमा विषय पर लेख, पुरस्कार एवं उपलब्धियों का उल्लेख किया जा रहा है। सिनेमा से सम्बन्धित पत्रिकाओं में 'स्टार डस्ट, फिल्मी दुनिया, फिल्मी सितारे आदि प्रमुख हैं।

साहित्य को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जाता है– पद्य तथा गद्य। पद्य या काव्य के दो भेद होते हैं– श्रव्य काव्य और दृश्य काव्य। नाटक, एकांकी, प्रहसन आदि दृश्य काव्य के अन्तर्गत आते हैं जिसका रंचमंच पर अभिनय किया जाता है और जिनसे सामाजिक के हृदय को आनन्द की प्राप्ति होती है। श्रव्य काव्य के अन्तर्गत– प्रबन्ध और मुक्तक दोनों आते हैं। गद्य, वाक्यबद्ध और विचारात्मक रचना होती है तथा पद्य छन्द में बँधी हुई लयात्मक रचना होती है। साहित्य की दृष्टि से व्यापक अर्थ में हिन्दी का प्रयोग पूर्वी, पश्चिमी, राजस्थानी, पहाड़ी और बिहारी इन पाँच उपभाषाओं को मिलाकर कुल अठारह बोलियों के लिए किया जाता है।[8] इन अठारह बोलियों के क्षेत्रों में अब खड़ी बोली का वर्चस्व है। आधुनिक हिन्दी का तात्पर्य केवल खड़ी बोली से लिया जाने लगा है जो भारत के लगभग 10 से अधिक राज्यों में पूर्णतः तथा देश के अन्य भागों में अंशतः प्रयोग किया जाता है। हिन्दी की गद्य विधाओं को दो भागों में बाँटा गया है– मुख्य गद्य विधाएँ और प्रकीर्ण गद्य विधाएँ।

प्रमुख गद्य विधाओं के अन्तर्गत– नाटक, एकांकी, कहानी, उपन्यास, निबन्ध और आलोचना को तथा प्रकीर्ण गद्य विधाओं के अन्तर्गत– जीवनी, आत्मकथा, यात्रावृत्त, गद्य–काव्य, संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, डायरी, भेंटवार्ता, पत्र–साहित्य, रेडियो–नाटक, रेडियो–वार्ता, अभिनन्दन ग्रन्थ, लघुकथा, एकालाप आदि आते हैं।

साहित्य की ही भाँति सिनेमा, टी. वी. तथा रेडियो के माध्यम से म्यूजिक शो, अन्त्याक्षरी, न्यूज, कार्टून, डिस्कवरी, गेम शो, स्वास्थ्य–चर्चा, धर्म एवं संस्कार पर प्रवचन तथा 'होम चैनलों' में 'धारावाहिक, फिल्में एवं लाइव टेलीकॉस्ट' का प्रसारण किया जाता है। सिनेमा में गद्य, पद्य, नाटक, आदि सभी विधाओं में दृश्य–श्रव्य सामग्री प्रसारित किया जाता है। इस प्रकार साहित्य और सिनेमा का आपसी सम्बन्ध बहुत गहरा होता जा रहा है। कहानी या उपन्यास के सभी तत्त्व सिनेमा में पाये जाते हैं जैसे– थीम, प्लॉट, एपिसोड, अण्डर प्लॉट, डाकुमेंट्स, डायरी आदि। कविता अथवा गीत के अधिकांश भेद (प्रार्थना गीत, राष्ट्रीय गानें, बाल एवं शिशु–गीत, युद्ध–गीत, प्रेम–गीत, नृत्य–गीत, उपालम्भ–गीत एवं गीतों की पैरोडी) के माध्यम से सिनेमा के द्वारा मनोरंजन प्रदान किया जाता है। गीतों के सभी तत्त्व भावात्मकता, आवेग, संगीतात्मकता, सहानुभूति, नाद एवं ध्वनि तथा यथार्थता सिनेमा में समाहित रहते हैं। गद्य की सभी शैलियों– कथा शैली, वर्णन शैली, स्वगत शैली, संवाद शैली, सूक्ति शैली, व्यंग्य शैली प्रलाप शैली आदि) का निर्वहन सम्यक् रूप से सिनेमा में प्रयुक्त किया जाने लगा है। साहित्य में छन्दोबद्ध, छन्दमुक्त और मुक्तछन्द तीनों में कविता लिखने की प्रथा रही है। मुक्तछन्दों में भी तुकान्तता, लय, प्रवाह, उतार–चढ़ाव आदि का ध्यान रखा जाता है यही स्थिति कमोवेश सिनेमा की भी रही है। यद्यपि सिनेमा के गीतों पर कतिपय आरोप लगता रहा है– खासकर अश्लील, बेतुके, मसालेदार,

भोंड़ेपन–युक्त चटनी गानों पर, किन्तु इसे युवापीढ़ी के (पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव के कारण) पसन्द के रूप में देखा जाना चाहिए। हाँ, ऐसे गानों पर प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिए जो भारतीय संस्कृति और संस्कारों के अनुकूल नहीं हैं, बात जब फिल्मी गानों की होती है तो इसमें कहीं–कहीं छन्द बह्र का निर्वहन भी दिखता है जो ग़ज़ल कत्अः, रुबाई, मुक्तक, गीतिका आदि किसी भी विधा में हो सकता है। कुछ लोकप्रिय फ़िल्मी गाने जो मुक्तक के 'विधाता छंद' में एक ही 'जमीन' पर रचे गये हैं–

1. बहारों फूल बरसाओ मेरा महबूब आया है। (हसरत जयपुरी, 1966 में)
2. सजन रे झूठ मत बोलो, खुदा के पास जाना है। (शैलेन्द्र, 1966 में)
3. किसी पत्थर की मूरत से महब्बत का इरादा है। (साहिर लुधियानवी, 1967 में)
4. खिलौना जानकर तुम तो मेरा दिल तोड़ जाते हो। (आनन्द बक्षी, 1970 में)
5. मुझे तेरी महब्बत का सहारा मिल गया होता। (आनन्द बक्षी, 1971 में)[9]

प्रत्येक फिल्म एक कहानी होती है और प्रत्येक सीरीयल एक लम्बा उपन्यास, जिसमें महाकाव्य के लक्षण पाये जाते हैं। साहित्यिक सह–सम्बन्धों के आधार पर 'सिनेमा के स्टोरी' की कथावस्तु 'साहित्य की कहानी' की कथावस्तु से पूर्णतः मेल खाती है इसमें भी कथात्मकता पाई जाती है– भूमिका, कथावस्तु, पात्र एवं चरित्र–चित्रण, देशकाल (वातावरण), संवाद, रस, अभिनय, भाषा–शैली, उद्देश्य, आदि सभी तत्त्वों के माध्यम से 'फिल्म की स्टोरी' को नया, आकर्षक एवं प्रभावी बनाया जाता है।

साहित्य की विधाओं की भाँति सिनेमा को भी कई भागों में बाँटा जा सकता है– आर्ट फिल्में, कामर्शियल फिल्में, टेली फिल्में, चाइल्ड फिल्में, डाक्यूमेंट्री फिल्में, वृत्तचित्र, एड फिल्में, वार एण्ड पीस फिल्में आदि। किसी भी फिल्म स्टोरी अथवा सीरीयल में साहित्य के छः प्रमुख तत्त्वों के अतिरिक्त अन्य तत्त्व भी पाये जाते हैं, जिन्हें फिल्म निर्माता का ग्रुप 'टीम–वर्क' को ध्यान में रखकर पूरा करता है। इसमें निर्माता, निर्देशक, पटकथा–लेखक, अभिनय–कर्मी, गीतकार, संगीतकार, कोरियोग्राफर, कमेंटेटर, स्टंट मैन, साज सज्जाकार, आदि व्यक्ति प्रतिभाग करते हैं। सिनेमा में भी नव–रस, गुण, ध्वनि, रीति आदि का समावेश होता है। साहित्य की ही भाँति सिनेमा में भी श्रृंगार–रस 'रसराज' है। लगभग प्रत्येक फिल्म में कम–से–कम एक प्रेम कहानी अवश्य रहती है, इस प्रेम–कहानी को ध्यान में रखकर ही फिल्म का ताना–बाना बुना जाता है। धारावाहिकों की कहानियाँ अत्यधिक लम्बी होती हैं जो कई पीढ़ियों के नायकों का चित्रण करती हैं और कई वर्षों तक 'टी. वी. सीरियल' के माध्यम से प्रसारित की जाती हैं जैसे–रामायण, महाभारत, क्योंकि सास भी कभी बहू थी, बालिका–वधू आदि। यहाँ पर कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण धारावाहिकों का उल्लेख जरूरी हो जाता है जो लोकप्रियता में समाज पर अपना महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालने में सफल रहे हैं तथा जिसके माध्यम से समाज की सद्यः घटित घटनाओं की जानकारी मिलती है–

1. मन की आवाज प्रतिज्ञा (चैनल– स्टार प्लस)
2. शोभा सोमनाथ की (चैनल– जी. टी. वी.)
3. अदालत (चैनल– सोनी)
4. चन्द्रगुप्त मौर्य (चैनल– इमेंजिन)
5. सी. आई. डी. (चैनल– सोनी)
6. बालिका–वधू (चैनल– कलर्स).....आदि..... आदि।

साहित्य का सिनेमा पर बहुत गहरा प्रभाव रहा है, सिनेमा के शुरुआत के प्रारंभिक वर्षों में पौराणिक एवं धार्मिक फिल्में ही ज्यादा बनाई गयीं। एक तो यह विषय धर्म, आस्था, परम्परा एवं विश्वास से जुड़ा हुआ था दूसरे बनी–बनायी पटकथा मिल जाती थी जिसमें अधिक परिवर्तन नहीं करना पड़ता था। सिनेमा के मध्यकाल में वीरता पूर्ण, सामाजिक और राजनीतिक फिल्में अधिक बनाई जानें लगीं जो आम जनता के बहुत करीब होती थीं। वर्तमान समय में वैज्ञानिक विकास के फलस्वरूप उत्पन्न समस्याओं जैसे– पर्यावरण प्रदूषण, मँहगाई, भ्रष्टाचार, मानवाधिकार, तथा क्षेत्रीय

सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को ध्यान में रखकर फिल्में बनाई जा रही हैं। दिसम्बर 2011 में बन रही डाक्यूमेंट्री फिल्म– 'वेयर हैव यू हिडेन माई न्यू क्रिसेन्ट मून' में कश्मीर की विधवाओं की पीड़ा और हताशा को गहराई के साथ उकेरा गया है। फिल्म के सम्बन्ध में पूछे जाने पर इस फिल्म की निर्माता 'इफत फातिमा' कहती हैं– 'डाक्यूमेंट्री फिल्में अभिव्यक्ति का सबसे ज्यादा सशक्त और क्षमतावान माध्यम हैं।[10]

साहित्यिक रचनाओं को आधार बनाकर अनेक फिल्मों एवं सीरीयल्स का निर्माण हो चुका है, और अभी भी हो रहा है। हिन्दू धर्म ग्रन्थों, संस्कृत के महाकाव्यों, ऐतिहासिक ग्रन्थों तथा देशप्रेम को ध्यान में रखकर कई फिल्में बनाई गयी हैं जैसे– मृच्छकटिकम् (शूद्रक) के आधार पर फिल्म– 'उत्सव', रामायण (वाल्मीकि) के आधार पर इसी नाम से फिल्म तथा धारावाहिक, महाभारत (वेदव्यास) के आधार पर इसी नाम से फिल्म तथा धारावाहिक, शिव महापुराण (वेदव्यास) के आधार पर 'ऊँ नमः शिवाय', श्रीमद्भागवत (वेदव्यास) के आधार पर श्रीकृष्णा, द्वारिकाधीश, आदि धारावाहिक, पंचतंत्र (विष्णुशर्मा) के आधार पर 'अमर चित्रकथा' धारावाहिक, सिंहासन बत्तीसी, वैताल पच्चीसी (लल्लूलाल) के आधार पर इसी नाम से धारावाहिक इसके अतिरिक्त चाणक्य, चन्द्रगुप्त मौर्य, पृथ्वीराज चौहान, शोभा सोमनाथ की, वीर शिवाजी, रानी लक्ष्मीबाई, जय हनुमान, जय बजरंगबली आदि धारावाहिकों का भी निर्माण हुआ है। किसी एक लेखक की रचना के आधार पर बनायी गयी फिल्मों तथा धारावाहिकों में 'मुंशी प्रेमचन्द' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनके उपन्यासों तथा कहानियों की समस्याओं, संदेशों को आम जनता तक पहुँचाने में सिनेमा के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है–

1. कफन– कफन फिल्म (1910) ए. एफ. टी. कम्पनी
2. निर्मला– निर्मला धारावाहिक (1980)
3. प्रेम सरोवर– प्रेम सरोवर धारावाहिक (1994–96) सुनील भट्ट
4. गुलदस्ता– गुलदस्ता उर्दू धारावाहिक (2006) सुनील भट्ट
5. तहरीर– तहरीर धारावाहिक (2006) गुलजार
6. ओका उड़ी कथा– कफन फिल्म (1977)
7. शतरंज के खिलाड़ी– शतरंज के खिलाड़ी फिल्म (1977) सत्यजीत रे
8. सद्गति– सद्गति फिल्म (1977) सत्यजीत रे
9. सेवासदन– सेवासदन फिल्म (1918) एम. एस. सुब्बुलक्ष्मी
10. बाजार–ए–हुस्न– सेवासदन धारावाहिक (1938)
11. मजदूर– धारावाहिक (1934)
12. दो बैलों की कथा– हीरा–मोती धारावाहिक (1959)

13. गोदान– गोदान धारावाहिक (1963)
14. गबन– गबन धारावाहिक (1966)
15. गोधूलि– गोधूलि धारावाहिक (1977)

मुंशी प्रेमचन्द के साथ ही साहित्य जगत के ख्यातिलब्ध साहित्यकारों की कृतियों पर भी अनेक फिल्में बनीं जिनका कथानक, सामाजिक समस्याओं, प्रेम–सम्बन्धों, नक्सलवाद, परिवार विभाजन आदि मुद्दों पर केन्द्रित था इस प्रकार की कुछ प्रसिद्ध फिल्में हैं –

1. पिंजर (अमृता प्रीतम) फिल्म–पिंजर, निर्देशक– वासु चटर्जी
2. डाकू (अमृत प्रीतम) फिल्म डाकू (1975), निर्देशक– वासु चजर्टी
3. परिणीता (शरतचन्द चटर्जी) फिल्म परिणीता (1953), निर्देशक– विमल राय
4. ए फ्लाई आफ पिजन्स (रस्किन बाण्ड) फिल्म– जुनून (1978), निर्देशक– श्याम बेनेगल
5. परिणीता (शरतचन्द चटर्जी) फिल्म– परिणीता (2005), निर्देशक– विधु विनोद चोपड़ा
6. देवदास (शरतचन्द चटर्जी) फिल्म– देवदास (1928, 1935, 1955, 2002 चार बार बनायी गयी)
7. (विमल मित्रा) फिल्म साहब बीबी और गुलाम, निर्देशक– गुरुदत्त
8. उपहार (रवीन्द्र नाथ टैगोर) फिल्म– उपहार
9. हजार चौरासी की माँ (महाश्वेता देवी) फिल्म, निर्देशक– गोविन्द निहलानी
10. (देवकी नन्दन खत्री) धारावाहिक– नीरजा गुलेरी
11. काबुलीवाला (रवीन्द्रनाथ टैगोर) फिल्म– काबुलीवाला
12. तीसरी कसम (फणीश्वर नाथ रेणु) फिल्म तीसरी कसम
13. जे. के. रोलिंग (जे. के. रोलिंग) फिल्म– वार्नर्स ब्रदर्स[11]

रवीन्द्र नाथ टैगोर की अन्य कृतियों– क्षुधिता पाषाण, अतिथि पर, राही मासूम रजा की रचना 'आधा गाँव' पर, देवकीनन्दन खत्री के 'भूतनाथ' पर भी फिल्म एवं धारावाहिकों का निर्माण हो चुका है। गाँधीजी के दर्शन तथा सत्य–अहिंसा पर कई पुस्तकें बाजार में आयीं, इन पुस्तकों के आधार पर गाँधीवादी विचारधारा से प्रभावित होकर कई फिल्में बनाई गयीं– गाँधी, गाँधी माई फादर, मुन्नाभाई एम. बी. बी. एस.....आदि।

साहित्य की एक नयी विधा टी. वी. नाटक का विकास तेजी से प्रचलन में है जो नाटक टी. वी. के लिए लिखे जाते हैं उन्हें ही टेलीविजन नाटक (धारावाहिक) कहा जाता है। रेडियो नाटक तो मात्र श्रव्य होता है जबकि टेलीविजन नाटक दृश्य–श्रव्य दोनों होता है इसमें संलाप, ध्वनि प्रभाव, संगीत, विभिन्न दृश्य, वेशभूषा, भावभंगिमा (अभिनय), रंगमंच सज्जा के साथ कैमरे और प्रकाश की व्यवस्था का भी महत्त्व होता है। संलाप तथा कथाव्यापार, अत्यधिक आकर्षक और रोचक होते हैं। कैमरे और फोटोग्राफी के माध्यम से कठिन दृश्य तथा अतिकाल्पनिकता को भी प्रस्तुत किया जाता है। सिनेमा के कलात्मकता और आकर्षकता के सम्बन्ध में विजय अग्रवाल का कथन है कि– 'कलात्मक फिल्मों का जन्म अपने समय की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों के गर्भ से हुआ है।'

हिन्दी सिनेमा ने भी हिन्दी साहित्य पर प्रभाव डाला है। कविता के क्षेत्र में बेडौल, छन्दमुक्त गद्यात्मक कविताओं पर तथा गद्य के

क्षेत्र में कहानियों, उपन्यासों पर सिनेमा का असर प्रत्यक्षतः दिखाई देता है। सिनेमा आम आदमी के जीवन में रच–बस गया है अतः पर्दे पर घटने वाली घटनाएँ एवं प्रवृत्तियाँ समय पाकर पन्नों पर उभरनें लगती हैं। वरिष्ठ फिल्म समीक्षक 'मनमोहन चड्ढा' ने कुछ समय पहले हिन्दी में 'हिन्दी सिनेमा का इतिहास' लिखा था इस पुस्तक पर उन्हें राष्ट्रपति के 'स्वर्ण कमल पुरस्कार' से नवाजा गया था। हिन्दी सिनेमा का प्रभाव केवल हिन्दी क्षेत्रों पर ही नहीं है बल्कि भारत से बाहर भी है जो भारत को समझने में सेतु का काम करते हैं। हिन्दी सिनेमा पाकिस्तान, अफगानिस्तान, इंग्लैण्ड, पोलैण्ड, सूरीनाम, कनाडा तथा खाड़ी के देशों में बहुत लोकप्रिय है। सिनेमा के माध्यम से भारत की साफ–सुथरी छवि अन्तर्राष्ट्रिय स्तर पर बनी है। डॉ0 मोनिका ब्रोवारचिक का यह कथन हिन्दी सिनेमा की लोकप्रियता के रूप में समझा जा सकता है कि– *'पोलैण्ड में आज की युवा पीढ़ी का हिन्दी और हिन्दी फिल्मों के प्रति रुझान ज्यादा है। हमारे यहाँ हिन्दी फिल्में बहुत चलती हैं। गानों के बोल से लेकर अभिनेता–अभिनेत्रियों के नाम तक युवा जानते हैं। मेरा मानना है कि भारत से बाहर खासतौर पर यूरोपीय देशों में, हिन्दी के विकास में हिन्दी फिल्मों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।'* [12]

सिनेमा ने अपने 100 वर्ष की यात्रा को कला के स्तर पर स्थापित किया है, यद्यपि समय के साथ कला का स्वरूप बदल गया है लेकिन सामाजिक सरोकार के निमित्त उसके महत्त्व को कम नहीं आँका जा सकता। कला के स्वरूप में यह बदलाव उसके उपभोक्तावादी एवं भौतिकवादी लक्ष्यों को लेकर है। हिन्दी सिनेमा ने अपने सामाजिक उपभोक्तावादी व्यवस्था के तहत जो व्यवसाय परक नियम बनाये थे वह टूटता जा रहा है। इसने समाज में प्रचलित कुप्रथाओं, परम्पराओं तथा कुत्सित मान्यताओं का खण्डन किया है। समाज–सापेक्ष लोगो के अन्दर जागरुकता फैलाया है इस दिशा में सिनेमा नें साहित्य को भी पीछे छोड़ दिया है।

फिल्म कला की एक शैली होती है, फिल्मों में कला एक अनिवार्य अंग होता है, टालस्टॉय का कथन है कि– 'अन्त में कला आनन्द नहीं है, वरन मानव एकता का साधन है जो मानव, मानव को सह–अनुभूति द्वारा परस्पर सम्बद्ध करती है। 'कला' मूल्यवादी और सौन्दर्यवादी दोनों धारणाएँ लेकर चलता है इस प्रकार साहित्य और सिनेमा का कला से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है, 'फिल्म' के सम्बन्ध में हुसैन का विचार है कि– "फिल्म भी कला की एक शैली है। कैनवास पर जब आकृति उभरती है तो उसका अपना प्रभाव होता है, जब उसमें संगीत को शामिल कर लिया जाता है या यूँ कहें कि जब आकृति के साथ ध्वनि शामिल कर दी जाती है तब वह आकृति अधिक प्रभाव छोड़ती है यही कारण है कि 'सिनेमा का इमेज' अधिक शक्तिशाली होता है वह तत्काल अपना प्रभाव देता है। फिल्म के जरिए आप अपनी बात अधिक प्रभावी और बेहतर ढंग से सामने रख सकते हैं। फिल्म एक रहस्यलोक में ले जाती है। पर्दे पर सब कुछ घटते हुए दिखता है, एक माहौल तैयार होता है जिससे दर्शक खुद–ब–खुद जुड़ जाता है।[13]

आज सिनेमा मनोरंजन का सबसे सस्ता और सबसे बड़ा माध्यम है, सिनेमा सामाजिक जिम्मेदारियों को निभाता रहा है। बाम्बे टॉकीज द्वारा बनाई गयी फिल्म 'अछूत कन्या (1936)' नें समाज के कटु सत्य को बखूबी पेश किया था लोगों ने इसे खूब पसंद किया, यह गाँधी के नेतृत्व में चल रहे आंदोलन का प्रभाव था। प्रभात फिल्म कंपनी द्वारा बनी फिल्म– 'दुनिया न माने' ने बेमेल विवाह प्रथा को बन्द कराने में महती भूमिका निभाई थी, उन दिनों महाराष्ट्र में अधेड़ व्यक्तियों द्वारा किशोरी बालिकाओं से विवाह रचाने का चलन आम था। इससे सामाजिक

चेतना जागी थी। डॉ0 भगवत शरण उपाध्याय ने सिनेमा की महत्ता को साहित्य पर भारी करार देते हुए इस प्रकार स्पष्ट किया है– 'नाटकों की सही परिपाटी भी प्रस्तुत न हुई थी कि सिनेमा ने उस पर छापामार कर अधिकार कर लिया।'

हिन्दी सिनेमा से इतर अंग्रेजी सिनेमा में योगदान करने वाले साहित्यकारों की पूरी एक श्रृंखला है– ग्राहम ग्रीन, जार्ज वर्नार्ड शॉ, हेमिग्वें, समरसेट, विलियम फॉकनर, आर्सनवेल्स, मॉम आदि। प्रारम्भ में हिन्दी साहित्यकारों ने सिनेमा के संगीत, नाटक, रंगमंच आदि को हेय दृष्टि से देखते हुए उसे त्याज्य समझा, जैसा कि जनवरी 1935 के 'विशाल भारत' पत्रिका में बनारसी दास चतुर्वेदी नें लिखा था कि– 'हम उन कठमुल्लाओं के सख्त विरोधी हैं जो सिनेमा को त्याज्य मान बैठे हैं, क्योंकि कठमुल्लापन स्वयं एक ऐसा व्यवसाय है जो सिनेमा व्यवसाय से कम भयंकर नहीं।'[14] हिन्दी साहित्य, सिनेमा की भविष्यगत चुनौतियों से घबरा गया है वह सिनेमिक कला की अवधारणा, विकास तथा उसके सौन्दर्यशास्त्रीय लोकप्रियता के आहट से बेचैन है। सिनेमा सभी ललित कलाओं तथा काव्य–गद्य के सिद्धान्त एवं व्यवहार के बीच सन्तुलन स्थापित करने में महती भूमिका निभा रहा है। प्रसिद्ध कथाकार कमलेश्वर का विचार है कि– *"सिनेमा की शक्ति को हम पहचानते हैं परन्तु साहित्यिक अहंकार और संकुचित सोच के कारण इस माध्यम को आत्मसात करने से घबराते हैं।"* हिन्दी साहित्य में भारतीय राजनीति से सम्बन्धित ग्रन्थों की रचना कम की गयी है जबकि हिन्दी सिनेमा नें भारतीय राजनीति का चित्रण करनें में नये मापदण्ड स्थापित किए हैं। जनता के बीच, भारतीय संसद की लगातार गिरती साख ने सिने–जगत को भी फिल्म बनाने के लिए प्रेरित किया है। 'हिन्दी सिनेमा और राजनीति' पर प्रकाश डालते हुए 'गोविन्द निहलानी' ने मान्यता व्यक्त की है कि– *'दर्शक को विश्वास में लेकर वस्तुस्थितियों पर उसे सोचने के लिए मजबूर कर देना राजनीतिक सिनेमा की खासियत है और ऐसा करके वह सामाजिक समस्याओं को सुलझाता है।'*

गुलजार की 'पंजाब के आतंकवाद' पर आधारित फिल्म 'माचिस' हमें कई कोणों से सोचने को मजबूर करती है। हजारों ख्वाहिशें ऐसी, हासिल, यहाँ, हजार चौरासी की माँ (मुख्यतः नक्सलवाद पर), पड़ोसी आदि अन्य राजनीतिक फिल्में हैं। पड़ोसी (1942–43) फिल्म के निर्देशक वी. शांताराम ने फिल्म में हिन्दू–मुस्लिम एकता का संदेश दिया है। 1948 ई0 में 'पड़ोसी' जब भागलपुर (बिहार) के सिनेमाघर में लगी तो वहाँ हो रहे दंगे बन्द हो गये। यह सुनकर वी. शांताराम ने कहा था– 'यह मुझे मिलने वाला सबसे बड़ा उपहार है।'[15] फिल्म 'बाम्बे तथा मि. एण्ड मिसेज अय्यर' ने धार्मिक भाईचारा में जबर्जस्त इजाफा किया। हिन्दी फिल्म उद्योग के ढाँचे, खाँचे ओर साँचे को तोड़ने वाले फिल्म निर्माता–निर्देशक रामगोपाल वर्मा उर्फ 'रामू' नें 2012 में 'मुंबई ताज होटल' आतंकी हमले (26/11/08) की घटना पर फिल्म बनाने का फैसला किया है। अंडर वर्ल्ड से जुड़े कई विषयों पर फिल्म बनाने वाले 'रामू' ने 13 दिसम्बर 2011 को ट्विटर पर उक्त फिल्म बनाने की घोषणा की। 'रामू' के अनुसार– *'इस फिल्म में दस पाकिस्तानी आतंकवादियो द्वारा एक भारतीय मछुआरे अमर सिंह सोलंकी की नौका पर कब्जा करने से लेकर मुंबई के गिरगाँव–चौपाटी के पास 'अजमल कसाब' को जिंदा पकड़ने के लिए मुंबई पुलिस के सिपाही 'तुकाराम ओंवले' के शहीद होने तक की कहानी दिखाई जायेगी।'*[16]

समाज को अन्धविश्वासों, रूढ़ियों, कुप्रथाओं आदि से मुक्ति दिलाने में फिल्मों का योगदान प्रशंसनीय है फिल्म 'अमृत मंथन' में नरबलि का विरोध किया गया है। चेतन आनंद का 'नीचा नगर' (1946) में कामगारों एवं मालिकों के बीच का संघर्ष प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है वहीं 'मृत्युदंड' फिल्म ने भी समाज

में अपनी जगह बनाई है। अन्य फिल्म निर्माताओं (वी. शांताराम, विमल राय, राजकपूर, वासु भट्टाचार्य और गुरुदत्त) ने इसी प्रकार की फिल्में बनाकर फिल्म जगत को ऊँचाई प्रदान की। फिल्म निर्माताओं ने फिल्मों के विषयवस्तु एवं प्रस्तुतिकरण के बल पर दर्शकों से अद्भुत तादाम्य स्थापित किया। कालान्तर की फिल्मों में अन्धविश्वासों के प्रति इतना गहरा विरोध व्यक्त नहीं किया गया। पुरानी फिल्में कहीं–न–कहीं सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों को लेकर चलती थीं, भावों एवं विचारों को उदार एवं प्रगतिशील बनाती थीं तथा सतही उपदेशात्मकता के बजाय समस्याओं और उसकी जटिलता की पड़ताल करती थीं। वंदनी, आवारा, जागते रहो, मदर इंडिया इसी प्रकार की फिल्में हैं।

पुरानी हिन्दी फिल्मों में 'नारी विमर्श' का प्रायः अभाव दिखाई देता है। आधुनिक फिल्मों में नारी के विविध पहलुओं को उजागर करने का प्रयास किया गया है। नारी की दशा, अवमानना, संघर्ष, बलात्कार तथा पारिवारिक उत्पीड़न को लेकर कई फिल्में बनायी गयी हैं। सिनेमा के प्रारम्भिक काल में पर्दे पर औरत की खास जरूरत नहीं होती थी उसे किरदार के रूप में नहीं, प्रत्युत एक मूर्ति के रूप में प्रस्तुत किया जाता था– कभी देवी, कभी दानवी, कभी खलनायिका तो कभी बाजार के रूप में। उसके व्यवहार, उसके नायिकापन, उसकी भावनाओं, उसकी समस्याओं तथा उसके चरित्र को पर्दे पर सिनेमा जगत ने मध्यकाल में प्रसारित करना शुरू किया था।

सिनेमा ने समाज को बहुत दिया है इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता किन्तु इसमें कुछ दोष भी हैं जो समाज के प्रति सिनेमा की जवाबदेही को देखते हुए अल्प हैं। व्यावसायिकता के कारण सिनेमा में काला धन लगा हुआ है इस उद्योग में माफिया, स्मगलर, सट्टेबाज तथा अपराधी प्रवृत्ति के लोग भी शामिल हैं जो सिनेमा जगत में भ्रष्टाचार फैलाने में लगे हुए हैं। फिल्म निर्माण की घोषणा करने के लिए भारी भरकम बजट और मीडिया के ढेरों प्लेटफार्म को देखते हुए यह तनाव और भी बढ़ जाता है। फिल्म की बाजारीकरण इस पूरी प्रक्रिया का अंग बन गया है।[17] सिनेमा को गाँव, समाज से कटकर अधिक व्यावसायिक हो जाने का खामियाजा भुगतान पड़ रहा है। हिन्दी सिनेमा ने हिन्दी के शब्दों में बेतुके–बेमेल और अश्लील शब्दों को भी प्रयोग करना शुरू कर दिया है जो साहित्य को सिनेमा से दूरी बनाने में भूमिका निभाने लगते हैं। हिन्दी शब्दों और ध्वनियों को कहीं–कहीं सिनेमिक भाषा की आड़ में तोड़–मरोड़ कर पेश किया जाता है जो सिने प्रेमियों के निराशा का कारण बनने लगते हैं।

शब्द, ध्वनि और उनका सटीक प्रयोग फिल्म में जान डाल देता है। कौन सा शब्द किस ध्वनि अथवा टोन में सिनेमा के किस संवेदनशील 'डायलॉग' में बोलना चाहिए इस बात का पूरा खयाल रखा जाता है। इस सम्बन्ध में स्वानंद किरकिरे (जो गीतकार और संवाद लेखक हैं) का विचार है कि– *'किसी खास फिल्म की ध्वनि कैसी होनी चाहिए इसका पूरा ख्याल रखना चाहिए। इस दिशा में शुरुआत रहमान नें किया, रहमान में भाषा और शब्दों को भी ध्वनि के तौर पर इस्तेमाल कर लेने की कुशलता है, दूसरी ओर स्नेहा खानविलकर एक अलग साउंड की तलाश में हैं। हमारी परम्पराओं में से ध्वनियाँ खोजी जा रही हैं जैसे– 'ओए लकी, लकी ओए' का संगीत।*'[18]

संगीत में 'फोक' की पकड़ लेकर लिखी और गायी जाने वाली ध्वनियों के लिए संगीतकार काफी मेहनत करते हैं। एक गीत में नयी ध्वनि नया उतार–चढ़ाव तथा तान (टोन) को देने के लिए दूर–दराज के गाँवों का चक्कर लगाना पड़ता है। स्नेहा खानविलकर ने अनुराग कश्यप की फिल्म *'गैंग्स ऑफ वसईपुर'* के लिए पूरा

बिहार छान मारा। लोक संगीत की धुन देनें, चटनी म्यूजिक, मसाला भरे गानों के सही पहचान एवं टोन के लिए वे मजदूरों, खोमचे, रेवड़ी वालों से मिलकर गाने में नया अन्दाज देने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। गीतकार 'मेलोडी' तथा 'अंडर टोन' को पकड़ते हैं जैसे– 'फँस गये रे ओबामा' में संजय कपूर ने कर दिखाया।

हिन्दी सिनेमा का समाज पर व्यापक प्रभाव है आगत वर्ष 2012 सिने–युग की शताब्दी का वर्ष है। 2012 के अन्त तक सिनेमा के सौ साल पूरे हो जायेंगे। पूरे वर्ष सिने–शताब्दी मनायी जायेगी। इधर बीच सदाबहार हीरो देवानन्द का हम लोगों के बीच से अचानक चले जाना दुःखद है। पूरे 88 वर्ष तक (28 सितम्बर 1923–04 दिसम्बर 2011) अपना सर्वोत्तम देने वाले देवानन्द की लोकप्रियता मृत्युर्पयन्त बनी रही– *'हर दशक में पीढ़ियाँ, विचार और नायक बदल जाते हैं लेकिन देवानन्द नहीं।'–सब कुछ कह जाता है यह वाक्य। 'राजू गाइड' से फिल्मों में पदार्पण करने वाले 'है अपना दिल तो आवारा'' देवानन्द अपनी खास अदा तिरछी निगाहें, नशीली आवाज, चलने का खास अंदाज के कारण लोगों के हृदय में हमेशा विराजते रहेंगे।*[19]

इधर बीच हिन्दी के व्यंग्य के सशक्त हस्ताक्षर श्रीलाल शुक्ल (31 दिसम्बर 1925–28 अक्टूबर 2011) का निधन हिन्दी साहित्य की सबसे बड़ी अपूरणीय क्षति है। उनके प्रसिद्ध राग दरबारी (1968) उपन्यास पर 1970 में **'साहित्य अकादमी पुरस्कार'** प्राप्त हुआ था। "अभी–अभी ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित श्रीलाल शुक्ल जी ने तब गद्य व्यंजनाओं के लिए भावभूमि तैयार किया जब साहित्य जगत में इसका अभाव दिखाई दे रहा था। यह खबर दैनिक जागरण के 7 नवम्बर 2011 के पृष्ठ–14 पर प्रकाशित किया गया था और उसी दिन के पृष्ठ–13 पर खबर छपी थी– 'डी. डी. मिश्र (डी आई जी–फायर) को इंसाफ माँगने पर मानसिक रोगी करार दिया जाता है। उन्हें इलाज के लिए घसीट कर कार्यालय से अस्पताल ले जाया गया है कि गोया वे कोई मुजरिम हों। वह चिल्लाते रह गये कि– 'वह होश–ए–हवास' में हैं उन्हें किसी इलाज की जरूरत नहीं है लेकिन किसी ने उनकी नहीं सुनी।" ये दोनों खबरें इत्तफाक नहीं हैं प्रत्युत हमारे जीवन में भ्रष्टाचार कितने वर्तुल तहों में पूरे शासन तंत्र पर हावी है इसका नजीर भर है। **'राग दरबारी'** का खाका (1968) तब शुक्ल जी ने महसूस किया था और आज यह पूरे ऊफान पर है। एक बड़े गाँव के माध्यम से पूरी भारतीय आधुनिक जिन्दगी की मूल्यहीनता, संस्कारहीनता, सामाजिक–आर्थिक विषमता, राजनीतिक जीवन की अराजकता, विद्रूपता और भ्रष्टाचार के फैलाव को इसमें आरेखित किया है जो हमारे यथार्थ जीवन को पीड़ित करने वाला अभिन्न अंग बन चुका है। साहित्य और सिनेमा के अन्तर्सम्बन्धों पर समाज के पड़ने वाले व्यापक प्रभाव के रूप में इसे महसूस कर सकते हैं।

साहित्य और सिनेमा समाज सापेक्ष होता है। समाज में घटने वाली प्रत्येक घटना, परिस्थिति और समय का पूरा प्रभाव साहित्य और सिनेमा पर पड़ता है। इस प्रकार साहित्य, सिनेमा और समाज तीनों का एक–दूसरे से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। पराधीनता के समय जब जनता त्राहि–त्राहि कर रही थी तब देशभक्ति के गीत और सिनेमा रचे जा रहे थे। जब आरक्षण का मुद्दा गरमाया तो 'आरक्षण' पर पुस्तकें प्रकाशित होने लगी तथा 'आरक्षण' नाम की फिल्म भी बनी और आज जब भ्रष्टाचार की खासी चर्चा है तो इस पर भी साहित्य एवं सिनेमा की रचना में तेजी आ गयी है। सामाजिक सरोकार से सीधे जुड़े होने के कारण, मानव मात्र के पथ–प्रदर्शक के रूप में ये महती भूमिका निभा रहे हैं। ये निरा मनोरंजन के ही साधन नहीं हैं प्रत्युत मानव के अन्तरंग और बहिरंग हर क्षेत्र में गहरी पैठ बनाये हुए हैं। साहित्य और सिनेमा ने समाज को

संस्कारित करने, उन्नति करने, सही दिशा देने आत्मविश्वासी बनाने तथा मानव का सर्वांगीण कल्याण करने का मार्ग प्रशस्त किया है। समाज से गायब हो गयीं दादी–नानी की कहानियों का स्थान अब फिल्में, धारावाहिक तथा कार्टून की कहानियों ने लिया है। इनकी पटकथा रोचक, कुतूहल वर्धक तथा आनन्दायक होती है। एक अच्छी 'स्टोरी नैरेशन' से बाक्स ऑफिस पर धमाल मच जाता है। मनोरंजन और 'आर्ट' वाली समझदारी के संतुलन से फिल्में 'हिट' हो जाती हैं।[20] खोसला का घोंसला, चक दे इंडिया, कंपनी तथा बंटी–बबली जैसी कामयाब और चर्चित फिल्मों को लिखने वाले जयदीप न तो फिल्मी पृष्ठभूमि से हैं और न ही साहित्य की दुनिया से जुड़े हैं लेकिन अपनी कलम से उन्होंने सिनेमा के कथानक के मिजाज को बदल डाला है।[21]

समग्रतः स्वस्थ समाज के परिसंचरण में साहित्य और सिनेमा के सम्बन्ध को भुलाया नहीं जा सकता है। आतंकवाद, नक्सलवाद, देशप्रेम, भ्रष्टाचार, मनोरंजन, मँहगाई, बलात्कार, छुआछूत, बाल–विवाह, नारी उत्थान, समाज के पिछड़े वर्गों तथा न्याय एवं समानता को लेकर साहित्य एवं सिनेमा नें बहुत योगदान दिया है। समाज की दुर्भावनाओं को मिटाने तथा सद्भावनाओं की संस्थापना में दोनों के सहयोग की जितनी सराहना की जाये वह कम ही है। प्रिंट मीडिया एवं इलेक्ट्रॉनिक मीडिया जो साहित्य एवं सिनेमा के सहयोगी क्षेत्र हैं, नें दुर्गम इलाकों से लेकर महानगरीय सभ्यता के प्रत्येक हलचलों को रेखांकित किया है। साहित्य और सिनेमा ने नैतिक एवं मानवीय मूल्यों की प्रतिस्थापना बिखरते सौहार्द को भाईचारे में बदलने, सामाजिक उन्नति एवं विकास में, प्राकृतिक आपदा से लड़ने में अपनी–अपनी भूमिका का सफल निर्वहन किया है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना के संपोषक साहित्य और सिनेमा के महत्त्व के अन्त में भर्तृहरि का यह श्लोक और विचार को विराम–

साहित्य संगीत कला विहीनः, साक्षात् पशुः पुच्छ विषाणहीनः।

तृणं न खादन्नपि जीवमानः, तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ।।

सन्दर्भ–सूची

1. वामन शिवराम आप्टे– संस्कृत हिन्दी शब्दकोश, रचना प्रकाशन, 57, नाटाणी भवन, मिश्रराजाजी का रास्ता, चाँदपोल बाजार, जयपुर– 302001, संस्करण– प्रथम 2004, पृष्ठ– 1104
2. ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी मिनी डिक्शनरी– संम्पादक– कैथरीन सोन्स, प्रकाशक– ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, वाई. एम. सी. ए. लाइब्रेरी बिल्डींग, जय सिंह रोड, नयी दिल्ली– सप्तम संस्करण– 2007, पृष्ठ– 207
3. साहनी एडवांस डिक्शनरी (अंग्रेजी–अंग्रेजी–हिन्दी), संम्पादक– एस. एन. मुद्गल, प्रकाशक– साहनी ब्रदर्स, 16, आपका बाजार, हॉस्पिटल रोड, आगरा, 17वाँ संस्करण, पृष्ठ– 777
4. डब्ल्यू. डब्ल्यू. डब्ल्यू. डॉट 24 दुनिया डॉट कॉम
5. हिन्दी सिनेमा का इतिहास– राजेश त्रिपाठी, सिनेमा जगत, ब्लागस्पॉट, शनिवार, फरवरी 13, 2010
6. कादम्बिनी– सम्पादक– शशि शेखर, हिन्दुस्तान मीडिया वेंचर्स लिमिटेड, 18–20 कस्तूरबा गाँधी मार्ग, नई दिल्ली, अक्टूबर 2011, पृष्ठ– 660
7. दैनिक जागरण, सम्पादक– वीरेन्द्र कुमार, प्लाट नं.– 321, पुराना जी. टी. रोड, नदेसर, वाराणसी, 15 दिसम्बर 2011, पृष्ठ– 12

8. भाषा विज्ञान की भूमिका– आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्मा, प्रकाशक– राधाकृष्ण प्रकाशन, 2/38 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण– छठा संस्करण, आवृत्ति सातवीं, 1986, पृष्ठ– 135–136
9. अभिनव प्रयास संपादक– अशोक 'अंजुम', प्रकाशक– 615, ट्रक गेट, कासिमपुर (पा0हा0) अलीगढ़, जुलाई–सितम्बर 2011, पृष्ठ– 60
10. दैनिक जागरण– सम्पादक– वीरेन्द्र कुमार, प्लाट नं– 321, पुराना जी. टी. रोड, नदेसर, वाराणसी, 8 दिसम्बर 2011, पृष्ठ–9
11. प्रतियोगिता दर्पण– सम्पादक– महेन्द्र जैन, प्रकाशक– 2/11ए, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा, सितम्बर 2008, पृष्ठ– 378
12. डॉ0 मोनिका ब्रोवारचिक– कादम्बिनी पत्रिका (सम्पादक–शशि शेखर), प्रकाशक– हिन्दुस्तान टाईम्स हाउस, 18–20, कस्तूरबा गाँधी मार्ग, नई दिल्ली– सितम्बर 2011, पृष्ठ– 18
13. दैनिक जागरण, सम्पादक– वीरेन्द्र कुमार, प्लाट नं– 321, पुराना जी. टी. रोड, नदेसर, वाराणसी, 11 जून 2011, पृष्ठ– सप्तरंग
14. भारतीय सिने सिद्धान्त– अनुपम ओझा, प्रकाशक– राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली– 5
15. सिनेमा का सामाजिक प्रभाव, भारतीय पक्ष, समाचार पत्र– 24 मई 2006
16. दैनिक जागरण सम्पादक– वीरेन्द्र कुमार, प्लाट नं0– 321, पुराना जी. टी. रोड, नदेसर, वाराणसी 14 दिसम्बर 2011 ,पृष्ठ– 13
17. इंडिया टुडे– सम्पादक–एम0 जे0 अकबर, लिविंग मीडिया इंडिया लि0, एफ– 26, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली, अंक–49, 13–19 अक्टूबर 2011, पृष्ठ– 14
18. वही, पृष्ठ– 30–31
19. दैनिक जागरण सम्पादक– वीरेन्द्र कुमार प्लाट नं.– 321, पुराना जी. टी. रोड, नदेसर, वाराणसी, 5 दिसम्बर 2011, पृष्ठ– 14–15
20. स्टार डस्ट–सम्पादक– शुभा शेट्टी, प्रकाशक– मैग्ना पब्लिशिंग कंपनी लिमिटेड, मैग्ना हाउस, 100/ई, ओल्ड प्रभादेवी रोड, प्रभादेवी, मुबंई, जून 2011, पृष्ठ– 25
21. कादंबिनी– सम्पादक– शशि शेखर, प्रकाशक– हिन्दुस्तान टाईम्स हाउस, 18–20, कस्तूरबा गाँधी मार्ग, नई दिल्ली– सितम्बर 2011, पृष्ठ– 24

Copyright © 2017, Dr. Har Govind Puri. This is an open access refereed article distributed under the creative common attribution license which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.